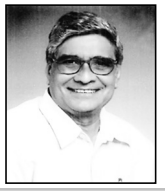

प्रस्तावना

ललित सुरजन

देश की संसद ने 9 जनवरी को 124वां संविधान संशोधन विधेयक लगभग सर्वसम्मति से पारित कर दिया। विपक्ष में पड़े वोटों की संख्या नगण्य थी। इस संशोधन का उच्च सवर्ण हिन्दुओं व अन्य जातियों के गरीबों के लिए दस प्रतिशत का आरक्षण लागू करना है। यह प्रावधान वर्तमान में जारी पचास प्रतिशत आरक्षण के अतिरिक्त होगा। आश्चर्यजनक है कि कांग्रेस पार्टी ने भी सत्तारुढ़ भाजपा द्वारा हड़बड़ी में लाए गए इस विधेयक पर बहस में विरोध की औपचारिकता पूरी की लेकिन मतदान में सत्तापक्ष का साथ दिया। भारतीय जनता पार्टी ने विधेयक को पारित करवा आरक्षण की अवधारणा को सिर के बल खड़ा कर दिया है। संविधान में आरक्षण के प्रावधान के पीछे कौन सी भावना और क्या कारण थे, उन्हें दरकिनार कर यह बड़ा कदम उठाया गया है। एक बार फिर देश के सर्वोच्च न्यायालय से ही उम्मीद की जा सकती है कि उसके संज्ञान में लाए जाने पर वह इस भयंकर भूल को सुधारने के लिए आवश्यक निर्णय लेगा। (यद्यपि पहली सुनवाई में उसने विधेयक को स्थगित करने से इंकार कर दिया है।)

हमारी दृष्टि में जातिभेद सिद्धांत की हिमायत करने वाले जन मूढ़ हैं और इनके साथ बहस करना पत्थर पर सिर मारना है। जिन्हें प्रक्षिप्तता का दोष दिखाई देता है, उनसे अवश्य यह पूछा जा सकता है कि वे प्रक्षिप्त अंश कब लिखे गए, क्यों लिखे गए और उन्हें मूल पाठ में जोड़ने के पीछे उनकी मंशा क्या थी।

आरक्षण की अवधारणा ने कब, कैसे जन्म लिया, इसे ठीक से समझ लेना होगा। साहित्यिक साक्ष्य इसमें हमारी सहायता करते हैं। महाकवि वाल्मीकि को भारतीय परंपरा में आदिकवि होने का ओहदा प्राप्त है। उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार वाल्मीकि रामायण की रचना लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व हुई थी। रामायण के उत्तर कांड में वर्णित है कि वेदपाठी तपस्वी शंबूक नामक शुद्र की हत्या भगवान राम ने की थी। इस प्रसंग से अनुमान लगा सकते हैं कि भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव, सवर्ण श्रेष्ठता, दलित उत्पीड़न आदि प्रवृत्तियों को इतने लम्बे समय से मान्यता हासिल है। महाकवि भवभूति के उत्तर रामचरित में भी शंबूक वध का वर्णन है। मनुस्मृति में वर्णभेद को स्वीकृति दी गई है, जिसके अनुसार किसी अपराध के लिए एक समान दंड न देकर जातीय श्रेष्ठता या निम्नता के अनुसार दंड देने की व्यवस्था प्रस्तावित है। ऋग्वेद के दशम मंडल के अंतर्गत पुरुष सूक्त में भी विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति का सिद्धांत इसे विभेदकारी मान्यता की पुष्टि करता है।

भारतीय संस्कृति के अनेकानेक स्वयंभू रक्षक और प्रवक्ता इन तमाम आख्यानों का औचित्य सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। उदाहरण के लिए एक कथित धर्मरक्षक कहते हैं कि हिन्दुओं में देवता के चरणों का बड़ा महत्व है और पुरुष सूक्त में जिस विराट पुरुष का उल्लेख है, वे तो साक्षात भगवान विष्णु हैं, जिनके चरण कमलों की वंदना की जाती है। इन श्रीचरणों से प्रकट हुए शूद्र भला कैसे निम्न हो सकते हैं? इस व्याख्या को मान लीजिए और अपने भाग्य को सराहिए कि आप शूद्र हैं!! कुछेक अन्य महाशय शंबूक वध को प्रक्षिप्त पाठ मानते हैं, अर्थात् उसे परवर्ती काल में वाल्मीकि रामायण में जोड़ा गया। उनका कहना है कि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम ऐसा कर ही नहीं सकते थे। यह तो जब भारत-भूमि पर धर्म की हानि होने लगी तब इस तरह की किस्से-कहानियां कहीं से लाकर जोड़ दी गई। याने हमारे सामने दो तरह के तर्क हैं। एक में जातिगत भेदभाव का औचित्य सिद्ध करने की कोशिश है; दूसरे में वास्तविकता को जानते हुए उसे छुपाने का उपक्रम।

हमारी दृष्टि में जातिभेद सिद्धांत की हिमायत करने वाले जन मूढ़ हैं और इनके साथ बहस करना पत्थर पर सिर मारना है। जिन्हें प्रक्षिप्तता का दोष दिखाई देता है, उनसे अवश्य यह पूछा जा सकता है कि वे प्रक्षिप्त अंश कब लिखे गए, क्यों लिखे गए और उन्हें मूल पाठ में जोड़ने के पीछे उनकी मंशा क्या थी। ज़ाहिर है कि इनका उद्देश्य एक वर्चस्ववादी सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था कायम करना था। यदि समाज में एकता और समरसता होगी तो उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। इसके लिए जरूरी है कि जनता को बरगलाकर उसमें फूट डाली जाए। ईश्वरीय सत्ता, देवी-देवताओं के चमत्कार आदि के सहस्रों, मिथक गढ़कर काम साधा गया। इस दुरभिसंधि का प्रारंभ